**ओ३म्**

**‘सर्वव्यापक व सदा अवतरित होने से ईश्वर का अवतार नहीं होता’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 भारत में मूर्तिपूजा का प्रचलन बौद्ध व जैन मत से आरम्भ हुआ है। बौद्ध मत के बढ़ते प्रभाव व वैदिक धर्म में ऋषियों व आप्त पुरूषों की कमी व अभाव के कारण अज्ञानता के कारण मूर्तिपूजा प्रचलन में आई है। रामायण एवं महाभारत काल में भारत में मूर्तिपूजा का प्रचलन नहीं था। इसका कारण यह है कि तब हमारे यहां ऋषि-मुनि-विद्वान-सत्योपदेष्टा-आप्तपुरूष-सत्य के प्रचारक संन्यासी आदि बड़ी संख्या में होते थे। अन्धविश्वास अज्ञान व स्वार्थ से उत्पन्न होता है। महाभारत काल के बाद देश में धीरे धीरे वेदों व यथार्थ विद्या का प्रचार न होने से अज्ञान फैलना आरम्भ हुआ। वेदों का स्वाध्याय व अध्ययन प्रायः बन्द हो गया था। वेदेतर ग्रन्थों में स्वार्थी लोगों ने इच्छानुसार प्रक्षेप करने आरम्भ कर दिये। रामायण व महाभारत दोनों ही इसके प्रमाण है। मनुस्मृति भारत के ग्रन्थों में आदरणीय ग्रन्थ था। यह भी प्रक्षेपों से नहीं बचा। इसमें सम्प्रदायवादियों ने इच्छानुसार प्रक्षेप किये। इस प्रकार से अज्ञान व अन्धविश्वास बढ़ते गये। पुराने संस्कार वैदिक दबते रहे और कुरीतियों व रूढि़यां बढ़ती रही। बौद्धमत के बढ़ते प्रभाव और मूर्तिपूजा से संतप्त होकर वैदिक धर्मियों ने भी मूर्तिपूजा आरम्भ कर दी। मूर्तिपूजा के प्रचलन के लिए आकारवान भगवानों की आवश्यकता पड़ी। रामायण व महाभारत पर ध्यान गया और इन इतिहास ग्रन्थों में मर्यादा पुरूषोत्तम राम एवं महाभारत से योगेश्वर श्रीकृष्ण का चयन मूर्तिपूजा को प्रचलित करने के लिए किया गया। धीरे-धीरे नये-नये सम्प्रदाय उत्पन्न होते गये और नये-नये भगवानों व देवी-देवताओं की संख्यायें बढ़ने लगी। इसी का परिणाम पुराणों की रचना है। यह आश्चर्य की बात है कि पुराणों से अत्यन्त उच्च कोटि के ग्रन्थ वेद, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, उपनषिदों, मनुस्मृति आदि के होते हुए इनसे निम्न स्तर के ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। यही कहा जा सकता है कि पूर्व उच्च कोटि के ग्रन्थों से पुराणों के रचनाकारों का मनेारथ सिद्ध न होने के कारण ऐसा किया गया। इस प्रकार मूर्तिपूजा प्रचलित हो गई और श्री रामचन्द्र जी व योगश्वर श्री कृष्ण जी अवतार बन गये।

 प्रश्न होता है कि इस संसार को बनाने व चलाने वाला तथा उचित समय पर प्रलय करने वाला सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान ईश्वर क्या अवतार लेता है? इसके लिए हमें वेद व प्राचीन वैदिक साहित्य यथा वेदांग, दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति आदि से साक्षी लेनी होगी। भारत में महाभारत काल के बाद वेदाध्ययन की यथार्थ आर्ष पद्धति से वेदों का अध्ययन-अध्यापन बन्द हो गया था। जो होता था व अनार्ष पद्धतियां थीं जिसमें वेदों के सत्यार्थ करने की योग्यता महाभारत काल के बाद के विद्वानों में नहीं थी तथापि सायण व महीधर आदि जो प्रमुख वेदभाष्यकार हुए उनके उपलब्ध ग्रन्थों से भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। उन्नीसवीं शताब्दी में गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर एक दिव्य-जीवात्मा का जन्म हुआ जो महर्षि दयान्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। महर्षि दयानन्द को 14 वर्ष की आयु में मूर्तिपूजा में असत्य व अज्ञान के दर्शन हुए। उन्होंने सच्चे ईश्वर की खोज व सत्य ज्ञान की प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और गृहत्याग कर दिया। वह देश भर के सभी धार्मिक विद्वानों, योगियों व संन्यासी व साधुओं के सम्पर्क में आये और उनसे विद्या प्राप्त की। वर्ष 1860 में वह मथुरा में आर्ष परम्परा के एक एकमात्र संस्कृत व्याकरण के विद्वान प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी गुरू विरजानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आते हैं और लगभग 3 वर्ष तक उनके सान्निध्य में रहकर गुरुकुलीय पद्धति से उनसे संस्कृत व्याकरण एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन करते हैं। उनके पास जाने से पूर्व ही उन्होंने सत्यासत्य युक्त अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया हुआ था और वह समाधि-सिद्ध योगी थे। गुरू विरजानन्द जी ने दयानन्द जी के चित्त में असत्य ज्ञान व संस्कारों को हटाकर सत्यज्ञान व विद्या का आरोपण किया जिससे वह प्राचीन वैदिक वांग्मय का अध्ययन कर वेदों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सके। वेदों के यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि का एक कारण उनकी योग में उच्च स्थिति और सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति भी रही और साथ ही अज्ञान से द्वेष व स्वार्थ की प्रवृत्ति से घृणा रही। अतः अवतारवाद पर कोई सत्य व्यवस्था दे सकता है तो वह एकमात्र महर्षि दयानन्द ही थे। वह पूर्ण वेद ज्ञानी होने के साथ स्वार्थशून्य आप्त पुरूष थे। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने अवतारवाद की निस्सारता का युक्ति व प्रमाणों से उत्तर दिया है। आईये, महर्षि दयानन्द जी से ही ईश्वर के अवतार लेने व न लेने का समाधान प्राप्त करते हैं। सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास से अवतारवाद विषयक प्रसंग प्रस्तुत है।

 (प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं? (दयानन्दजी द्वारा उत्तर) नहीं, क्योंकि **‘अज एकपात्’, ‘सपय्र्यगाच्छुक्रमकायम्’** यह दोनों यजुर्वेद के वचन हैं। यह व ऐसे अन्य वेद के वचनों से परमेश्वर का जन्म नहीं होता। (प्रश्न) **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। भगवदगीता।** श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूं। (उत्तर) यह बात वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा होने के कारण धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि **‘परोपकाराय सतां विभूतयः’** परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन व धन होता है तथापि इस से श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते। (प्रश्न) जो ऐसा है तो संसार में चैबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इन को अवतार क्यों मानते हैं? (उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान होने से भ्रमजाल में फंस कर ऐसी-ऐसी अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं। (प्रश्न) जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके? (उत्तर) प्रथम तो जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार व शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय करता है उस के सामने कंस और रावयणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस व रावणादि के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा को एक शुद्र जीव (रावण व कंस आदि) के मारने के लिये (ईश्वर को) जन्म-मरणयुक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है?

 इसके अतिरिक्त यदि ईश्वर भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं। क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उन के उद्धार करने का पूरा सामथ्र्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस व रावणादि का वध और गोवर्धन आदि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म है? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो **‘न भूतो न भविष्यति’** ईश्वर के सदृश कोई न है और न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इस से न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उस का आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना व आना वहां हो सकता है जहां वह परमेश्वर न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। परमेश्वर का जाना-आना, जन्म-मरण इसलिये कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये ‘ईसा’ आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं थे, ऐसा समझ लेना। क्योंकि वह राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य हैं।

 वेदों में ईश्वर को सर्वव्यापक बताया गया है। वह अखण्डनीय, एकरस तथा निरवयव है। अतः सर्वव्यापक होने से वह समस्त ब्रह्माण्ड व इसके सभी छोटे-बड़े पदार्थों के अन्दर व बाहर सदा उपस्थित वा अवतरित है। सर्वत्र उपस्थित व अवतरित सत्ता का अवतार होना, ऐसा कहना व मानना सर्वथा असम्भव है। यह भी उल्लेखनीय है कि महर्षि दयानन्द ने 16 नवम्बर, 1869 को विद्या की नगरी काशी में वहां के शीर्षस्थ पण्डितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया था। इस शास्त्रार्थ में स्वामी विशुद्धानन्द, बालशास्त्री आदि सहित देश के 30 से अधिक शीर्षस्थ सनातनी विद्वान मूर्तिपूजा को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए समुद्यत थे परन्तु वेद का एक भी प्रमाण न तब दे सके थे न उनके अनुयायी आज तक दे पाये हैं। ईश्वर को मूर्तिपूजा द्वारा नहीं अपितु योगदर्शन की पद्धति से योगाभ्यास द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः अवतारवाद एवं उस पर आधारित मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध, ज्ञानविरुद्ध, युक्ति व प्रमाणों से विरुद्ध सिद्ध होती है। वैदिक धर्मी सभी मनुष्यों के लिए सन्ध्या, अग्निहोत्र-देवयज्ञ आदि पंच महायज्ञों का नित्यप्रति करने का विधान है। इसी से मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। ईश्वर को प्राप्त करने व जीवन को सफल करने का वेदाध्ययन कर वेदानुकूल आचरण के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। आईये, वेदविरुद्ध आचरण को छोड़कर श्रावण के महीने में वेदाध्ययन व वेदाचरण का व्रत लें और जीवन को सफल करें।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**